"नुर्म" के मायावी सपने

शहरों की "चरमराती ढाँचागत व्यवस्था" को देखते हुए यूपीए सरकार नें
दिसम्बर 2005 में जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी पुनर्निर्माण मिशन (NURM) का
ऐलान किया जिसमें 7 वर्षों के लिये 63 शहरों में 1,26,000 करोड़ खर्च
करने की योजना है। सतही तौर पर NURM की योजना मन को तो
लुभा लेती है, लगता है कि इतनी भारी रकम से शहरों की काया
पलट जायेगी, लेकिन गौर से देखने से पता चलता है कि
सुनहरे परत के नीचे कच्चा लोहा ही है।

मिसाल के तौर पर NURM में भारत सरकार, प्रादेशिक सरकार, और
स्थानीय ~~[illegible]~~ निकायो के बीच सहमति पत्र पर
हस्ताक्षर होंगे, जिससे बाजार से लिये हुए कर्ज़ और नवनिर्मित
व्यवस्था को बरकरार रखने की जिम्मेदारी स्थानीय निकायो
की होगी जबकि निर्माण कार्य का लाभ निजी कम्पनियों को
मिलेगा। याने कि सार्वजनिक क्षेत्र भैंस की देखरेख करेगी
और निजी क्षेत्र को मलाई मिलेगी।

मलाई छानने के इल्जाम से बचने के लिये NURM यह आश्वासन
देती है कि शहरी गरीबों को मूलभूत सुविधाओं भी प्रदान की
जायेंगी। लेकिन पते की बात तो यह है कि ढाँचा निर्माण में
80% से अधिक पूंजी खर्च होगी और इस पर निगरानी शहरी
विकास मंत्रालय रखेगी। जबकि शहरी गरीबों के लिये योजना
पर गरीबी उन्मूलन मंत्रालय का अधिकार होगा, लेकिन इस शर्त
पर कि NURM में रोज़गार पैदा करने के लिये कोई प्रावधान
नहीं होगा।

अब बिना रोजगार के गरीबी कैसे दूर होगी ? बिना आय के गरीब
सुविधाओं को कैसे प्राप्त कर सकेगा ? इन सुविधाओं को शहर
के ढाँचागत विकास से कैसे जोड़ा जायेगा ? दोनों मंत्रालयों के
बीच संयोजन कैसे होगा ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर NURM में नही
है। केवल शर्तों की सूची है। जिनके तहत प्रादेशिक सरकारों
को किराया नियंत्रण और भूमि सीमा अधिनियमों को खारिज करना
पड़ेगा, स्टैम्प ड्यूटी को घटाना पड़ेगा, कृषि भूमि के उपयोग को
बदलने और भूमि विकास और निर्माण के नियमों को सरल बनाना पड़ेगा,
और पंजीकरण का कम्प्यूटरीकरण का करना पड़ेगा। याने कि ज़मीन की
खरीदी और निर्माण से मुनाफा का रास्ता बिल्डरों के लिये आसान हो
जायेगा। खास तौर से इसलिये क्योंकि NURM में निजी क्षेत्र को
प्रोत्साहित करने पर विशेष ज़ोर है।

बीच बीच में कुछ "लोकप्रिय" प्रावधान भी हैं । जैसे कि स्थानीय निकायों को हिसाब-किताब आधुनिक तरीके से रखना पड़ेगा और अपने बजट में गरीबों की सुविधाओं के लिये हिस्सा निर्धारित करना पड़ेगा । ~~इसके~~ प्रादेशिक सरकारों को भी निर्देश हैं कि स्थानीय निकायों का गठन 74वें संशोधन के अंतर्गत तत्काल करें, और सार्वजनिक सूचना उपलब्ध करवायें । साथ ही 20-25% जमीन कमज़ोर वर्ग के आवास के लिये निर्धारित हैं जिनमें पट्टे की व्यवस्था होनी चाहिये ।

परंतु आधुनिकतम इलेक्ट्रौनिक तकनीक गरीबों तक कैसे पहुँचेगी और क्या उन्हें प्रशासन और निर्णय-प्रणाली में भागीदारी करने का मौका मिल पायेगा ? क्या वे उस ज़मीन या मकान की कीमत अदा कर पायेंगे जो उनके लिये "आरक्षित" है, या क्या वह भी बाज़ार में स्पर्धा का शिकार हो जायेंगे ? क्या वे बिल्डरों, भू-माफिया, और बड़े सेठों से कभी मुकाबला कर पायेंगे ? इन सवालों पर NURM मौन है ।

लेकिन वित्त व्यवस्था और प्रबंधन पर काफी खुलासा है । बड़े शहरों के लिये भारत सरकार 35% और प्रादेशिक सरकारें 15% पूंजी की व्यवस्था करेंगी । छोटे शहरों के लिये हिस्सा 50% और 20% हो जायेगा । बाकि 30-50% राशी बाज़ार से प्राप्त करना होगा । सरकारी पैसों में से 35% रख-रखाव और प्रशासन के लिये आरक्षित है । यानें कि अधिकांश पूंजी बाजार से आयेगी और इसी का फायदा उठा कर बड़ी कम्पनियां एक हाथ से कर्ज़ा देंगी और दूसरे हाथ से ठेका लेंगी ।

शहरी योजना बनाने का काम भी प्राइवेट सलाहकार करेंगे, योजनाओं को पारित करने का भार अफसरों और विशेष समितियों को सौंपा जायेगा, और स्थानीय निकायों को क्रियांवन की जिम्मेदारी दी जायेगी । याने कि विधायक, पार्षद, और अन्य निर्वाचित जन प्रतिनिधियों से योजना के लिये अनुमति नहीं ली जायेगी । अंततः प्रजातंत्र में चुने हुए व्यक्तियों की जो जवाबदेही है वह दरकिनार करके, जनता की भागीदारी क्रमशः कम होती जायेगी ।

वास्तव में NURM अकेली योजना नहीं है जो बाज़ार को बढ़ावा देते हुए लोकतंत्र को कमज़ोर कर रही है। छोटे और मध्यम शहरों के लिये भी इसी प्रकार की योजना है। कुछ बड़े शहरों में ढाँचागत व्यवस्था और पर्यावरण को सुधारने के नाम पर भी योजनायें बनी हैं। सभी कहीं न कहीं नई आर्थिक नीति, विश्व बैंक द्वारा मनोनित 'सुधार' कार्यक्रम, और विश्व व्यापार संगठन की शर्तों से जुड़ी हुई हैं। मायाजाल केवल राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर की है।

इस मायाजाल की रचना क्यों की गई? क्या शहरों में पैसों के अभाव को NURM पुरा करेगी? यदि पूरी राशी को 63 शहरों में 7 सालों के लिये बाँट दिया जाये तो औसतन हर शहर को 6.290 करोड़ प्रति वर्ष मिलेंगे। अधिकतर नगर निगमों का सालाना बजट इससे अधिक है। इसका मतलब है कि NURM का असली मकसद नगर निगमों और पालिकाओं को बाई-पास करके इस पुंजी को निजी क्षेत्र के सुपुर्द करना है। पर सूद लौटाने की ज़िम्मेदारी निगमों की ही रह जायेगी।

प्राइवेट कम्पनियों की गुणवान छवि ऐसे ही कुछ मिथकों पर आधारित है। उनके द्वारा कमाये 'मुनाफे' का गुणगान तो अक्सर होता है और यह भी कहा जाता है कि उनका काम बड़ा फुर्तीला होता है, लेकिन इसकी बहुत कम जानकारी दी जाती है कि उनके मुनाफे के ऐवज में नागरिकों को कितना कर्ज़ लौटाना पड़ता है; या उनके फुर्तीले काम से कितने गरीबों का भला होता है; या वे सार्वजनिक ढाँचे का कितना इस्तेमाल करते हैं और उसके लिये कितना भुगतान करते हैं।

हर शहर में देखा जायेगा कि सड़कों का रख-रखाव सार्वजनिक निर्माण विभाग करती है, लेकिन उसपर सरपट भागती हुई निजी गाड़ियाँ और वाहन कम से कम कर देती हैं। उसी प्रकार पानी, बिजली, हस्पताल, विश्वविद्यालय इत्यादि की रचना पहले सरकार करती है और बाद में संरचना का फायदा उठाने के लिये तमाम ठेकेदार इकट्ठे हो जाते हैं। केवल उन इकाइयों को सरकार के खाते में छोड़ दिया जाता है जिनमें मुनाफे की सम्भावना नहीं है।

हर शहर में यह भी देखा जा रहा है कि गरीबों के घरों को तोड़ा जा रहा है और ज़मीन से उनकी बेदखली हो रही है। प्रशासन और अदालतों का इल्ज़ाम है कि गरीबों ने 'अतिक्रमण' किया है लेकिन कोई इनसे यह नहीं पूछता कि गरीबों की क्रयशक्ति के अनुकूल वैध घरों का निर्माण कहाँ हुआ है। सस्ते से सस्ता जनता फ्लैट भी 6.25 लाख से कम में नहीं आता और जो मज़दूर परिवार दिन में 6.100 कमाता हो वो इतनी बड़ी रकम कहाँ से लायेगा ?

आवास के साथ साथ गरीब रोज़गार से भी वंचित होता जा रहा है। हर शहर में रिक्शा, रेहड़ी, खोमचा, छोटे उद्योग, कूड़ा बीनने, कारीगर, झाड़ू-पोंछा-बर्तन इत्यादि अवसायों पर पाबंदी लगाई जा रही है। कहीं बहाना पर्यावरण को बचाने का, कहीं भीड़ कम करने का, और कहीं "असामाजिक तत्वों" पर नियंत्रण का। कुल मिला कर शहर की एक "साफ सुथरी" तस्वीर को उभारने की कोशिश है जहाँ गरीब ही "गंदा" है।

80 के दशक के ज्वलंत सामाजिक सवाल घटे और लुप्त हो गये हैं। मज़दूर को न्यूनतम वेतन क्यों नहीं मिलता ? पेवमेंट पर पड़े हुए बच्चे को घर क्यों नहीं मिलता ? शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरतें प्रशासन क्यों नहीं मुहैय्या करती ? सड़क पर पैदल यात्री और साइकिल के लिये जगह कहाँ है ? 90 के दशक से आरम्भ "उदारीकरण" की सुपर-फास्ट गाड़ी ने बैलगाड़ी गाड़ियों को पटरी से बाकायदा उतार दिया है।

अब सपना है "वर्ल्ड-क्लास" शहर का। जिसमें विदेशी पर्यटक स्वच्छंद घूमेंगे, अंतर्राष्ट्रीय खेल-कूद का आयोजन होगा, चमकती हुई गाड़ियाँ सड़क पर बेरोकटोक दौड़ेंगी, हर दुकान में दुनिया का सामान बिकेगा। इसी सपने का एक अँश NURM साकार करने में लगा है। लेकिन 'वर्ल्ड क्लास' की उपाधी पाने के लिये उतावला सम्पदा वर्ग यह आनदेखी कर देता है कि वर्ल्ड क्लास शहर में कीमतें भी वर्ल्ड क्लास होंगी, हिंसा भी वर्ल्ड क्लास होगी, और उस "वर्ल्ड-क्लास" समाज को लुप्त करने की क्षमता न होगी, जिसके कँधों पर अय्याशी का ये सब सवार है।

कुछ दर्शकों को लगता होगा कि यह सिर्फ अमीर और गरीब के बीच की लड़ाई है । बाकी शहर का इससे भला क्या लेना देना ? ढाँचा सुधरेगा तो सबको पानी बिजली सफाई तो मिलेगी ? परंतु मायाजाल का यही अनोखा पहलू है कि दिखाई देते हुए दिखाई नहीं देता । शहर की नींव मजदूरों की मेहनत है । बिना इनके सस्ते श्रम के न मकान बनेंगे, न गाड़ियाँ चलेंगी, न घर और सड़क साफ होंगी, न पानी बिजली मिलेगी, न स्कूल हस्पताल काम करेंगे, न दफ्तर कारखाने चालू रहेंगे ।

ऊपर से जमीन, आवास, और हर सुविधा निजीकरण के बाज़ार में गर्म होंगी । बढ़ती हुई कीमतों को वही परिवार सह पायेगा जो उस बाज़ार में सिकंदर हो । अन्यथा मध्यम वर्ग भी कर्ज़ में डूबता जायेगा । और शहर की 'सफाई' अभियान में छोटी दुकानें, दफ्तर, और कारखाने भी बंद होते जायेंगे ताकि उनकी जगह में विदेशी कम्पनियाँ और देसी धन्नासेठ अपनी फुर्ती का ~~काम~~ कमाल दिखा सकें । क्या ऐसे विश्व व्यापी करतब देखने से जिंदगी की असलियत लापता हो जायेगी ?

दुन्नू राय

Hazards Centre
92-H, Pratap Market
Munirka
New Delhi 110067.

(Please make the cheque in the name of A K Roy)